00Pratiman_content page_Layout 1 13-02-2024 16:15 Page i

प्रतिमान

समय

समाज

संस्कृति

जनवरी-दिसंबर, 2022
वर्ष 10, संयुक्तांक, 19-20

00Pratiman_content page_Layout 1 13-02-2024 16:15 Page ii

प्रतिमान
समय समाज संस्कृति

जनवरी-दिसंबर, 2022 (वर्ष 10, संयुक्तांक, 19-20)
समाज-विज्ञान और मानविकी की पूर्व-समीक्षित अर्धवार्षिक पत्रिका

प्रधान संपादक
रविकान्त
अतिथि संपादक
सदन झा
संपादक
हिलाल अहमद, प्रभात कुमार
सम्पादकीय प्रबंधन (मानद)
कमल नयन चौबे
सहायक संपादक
मृत्युंजय, मनोज मोहन, दिनेश कुमार

डिज़ाइन : मृत्युंजय चटर्जी और अश्वनी कुमार, **कम्पोज़िंग :** चंदन शर्मा, **आवरण :** दीपमाला

संपादकीय सलाहकार : अभय कुमार दुबे, आदित्य निगम, चारु गुप्ता, हन्स हार्डर, राजीव भार्गव, विजय बहादुर सिंह, राधावल्लभ त्रिपाठी, सुधीर चंद्र, शाहिद अमीन, विवेक शानबाग, किरण देसाई, सतीश देशपाण्डे, गोपाल गुरु, हरीश त्रिवेदी, शैल मायाराम, विश्वनाथ त्रिपाठी, फ्रंचेस्का ओर्सीनी, निवेदिता मेनन, आलोक राय, उज्ज्वल कुमार सिंह, संजय शर्मा.

CSDS बेमिसाल 60 साल 1963-2023 **भारतीय भाषा कार्यक्रम**
विकासशील समाज अध्ययन पीठ (सीएसडीएस)
29, राजपुर रोड, दिल्ली-110054 फ़ोन : 91.11. 23942199
ईमेल : pratiman@csds.in; वेबसाइट : www.csds.in/pratiman
+

वाणी प्रकाशन

4695/21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 फ़ोन : 91.11.23273167, 23275710
ईमेल : vaniprakashan@gmail.com; वेबसाइट : www.vaniprakashan.com
यहाँ प्रकाशित रचनाओं का सर्वाधिकार रचनाकारों के पास है, जिसके शैक्षणिक और ग़ैर-व्यावसायिक इस्तेमाल के लिए प्रकाशक से इजाज़त लेने की ज़रूरत नहीं है। अलबत्ता, लेखक /प्रकाशक को इत्तला कर दें तो उन्हें बेहद ख़ुशी होगी।
सेंटर फ़ॉर द स्टडी ऑफ़ डिवेलपिंग सोसाइटीज़, 29, राजपुर रोड, दिल्ली-110054 के निदेशक अवधेन्द्र शरण के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक अमिता माहेश्वरी, वाणी प्रकाशन, 4695/21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 द्वारा प्रकाशित और ऑप्शन प्रिंटोफ़ास्ट, 41, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली-110092 में मुद्रित।
संपादक : रविकान्त

मूल्य : व्यक्तिगत : ₹ 350, संस्थागत : ₹ 500
विदेशों के लिए : $ 20 + डाक ख़र्च अतिरिक्त या किसी अन्य मुद्रा की समकक्ष राशि
ISSN: 2320-8201

अनुक्रम

संपादकीय

हिंदी जनपद का सामाजिक इतिहास V

पाक शास्त्र और आदर्श राष्ट्र : कुछ दैनंदिन नुस्ख़े
सौम्या गुप्ता 1

हिंदी सिनेमा में ग़ज़ल का सांगीतिक सफ़र
शिखा झींगन 28
अनुवाद : दिनेश कुमार

प्रौद्योगिक आधुनिकता और सामाजिक अनुभव, 1870-1930
प्रभात कुमार 55

***खट्टर काका* का मैथिल समाज : हास्य-विनोद की लोकायत संस्कृति**
देवनाथ पाठक 89

तारा उपासना का मैथिल स्वरूप : रोज़मर्रा की धार्मिकता
कमल मिश्रा 126

पृथक उत्तराखंड आंदोलन में महिलाएँ : भागीदारी से हिस्सेदारी तक
संजीव और महिका 152

सिनेमा, साहित्य और इतिहास : प्रेमचंद, राहुल सांकृत्यायन और सिनेमा की सामाजिकता
शुभनीत कौशिक 171

दलित अस्मिता विमर्श

कौन-से वाल्मीकि? उपनिवेशवाद, हिंदुत्व और सफ़ाईकर्मी समाज का धार्मिक इतिहास
जोएल ली 197

'कुलटा' और पीड़िता : औपनिवेशिक उत्तर भारत में सवर्ण लेखन और दलित स्त्री चित्रण
चारु गुप्ता 231

दलित नृत्यांगनाएँ : अपराधीकरण, उत्कंठा और सुधार
नीता कोली 283

हिंदी नवजागरण और 'अछूत समस्या'
सुरेश कुमार 311

00Pratiman_content page_Layout 1 13-02-2024 16:15 Page iv

भीमगीत : भोजपुरी लोक में बहुजन अस्मिता का हस्तक्षेप
धनंजय सिंह **343**
स्वच्छता की सामाजिकी और रेलवे के स्वच्छकार
सुमित उज्जैनवाल **367**

विविध संधान
वाजिद अली शाह की इल्मी योग्यता और सरपरस्ती **383**
तिमसाल मसूद
ध्रुपद में स्त्री स्वर : हिंदुस्तानी संगीत का सामाजिक पक्ष
प्रवीण कुमार झा **399**

समीक्षा लेख
आरंभिक आधुनिकता, हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन और *सुंदर के स्वप्न*
रबि प्रकाश **411**
नागरिकता और संवैधानिकता
कुँवर प्रांजल सिंह **427**

समीक्षा
***आउटकास्ट बॉम्बे* : शहर, ग़रीबी और जाति के सवाल**
अरुण कुमार **438**
यक़ीन की आवृत्ति से बुना गया *क़यास*
वागीश शुक्ल **443**
उपनिवेशवाद विरोधी पाठक होने की ज़िद
मोना दास **452**
हिंदी में समाज-विज्ञान और *मर्यादा*
वेंकटेश कुमार **459**
वर्तमान सांस्कृतिक हिंसा की ज़रूरी समझ
आलोक टंडन **468**

किताबें मिलीं
मनोज मोहन **478**

रचनाकार-परिचय और संपर्क **483**
***प्रतिमान* के लिए संदर्भ-साँचा** **485**

प्र संपादकीय

प्रतिमान
समय समाज संस्कृति

हिंदी जनपद का सामाजिक इतिहास

इसे विडंबना ही कहना चाहिए कि सामाजिक इतिहास पर एकाग्र इस संयुक्तांक के उद्गम की कहानी उस त्रासद कोविड-काल में जाती है, जब हमारे सारे वैद्यक ज्ञान और सांस्कृतिक संसाधन एक साथ चूक गए थे, और हम एक-दूसरे से सामाजिक दूरी बनाने को बाध्य हो गए थे! महामारी के साये में जिए जाने की ज़िद के उसी आलम में इसके अतिथि संपादक सदन झा ने अपने एक प्रस्तावित संग्रह की सामग्री को *प्रतिमान* के अंक के रूप में छापने का अहद हमारी टीम से किया था। तब से इसमें और भी लेख जुड़ते गए और इसका कलेवर इतना विशाल हो गया। उम्मीद है कि सुधी पाठक हिंदी जनपद के सामाजिक इतिहास के इन पन्नों से लाभान्वित होंगे, बात से बात पैदा करेंगे, इन सवालों में अपनी मेधा और लगन से नए आयाम जोड़ेंगे, उन्हें नई गहराई देंगे। सामाजिक इतिहास लेखन पिछली सदी में उपजी और ख़ूब लोकप्रिय हुई एक अंतरानुशासनिक विधा है, जो अपनी जड़ों से अनेकानेक शाखा-प्रशाखाओं में बँटकर आज फल-फूल-फैल रही है। कुछ यूँ कि आज उनको उनके उत्स से जोड़कर देखना अब तक स्थापित हो चुकी उनकी स्वतंत्र इयत्ता के साथ नाइंसाफ़ी होगी। दिल्ली विश्वविद्यालय के सुमित सरकार जैसे हमारे उस्ताद पढ़ाते थे कि सोशल हिस्ट्री को कुछ लोग 'टोटल हिस्ट्री' भी मानते हैं, यानि सामाजिकता के दायरे में आकर आप हर तरह का इतिहास कर सकते हैं : राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सांस्थानिक, धार्मिक, बौद्धिक, सामुदायिक, वर्गीय, लैंगिक, आदि, आदि।

मार्क्सवादी रिवायत में तो मज़दूरों, किसानों आदि जैसे हाशिये की इकाइयों को पहले से ही हिरावल दस्ता मान लिया गया था, तो उनके जनांदोलनों के इर्द-गिर्द बीसवीं सदी में बहुत-सारा काम हुआ, ख़ासकर आज़ादी के आंदोलन, पूँजीवाद, ट्रेड यूनियन और पार्टियों से इन वर्गों के बनते-बिगड़ते रिश्तों को लेकर। अभिजात्य (एलीट) और निम्नवर्गीय (सबॉल्टर्न)

हलक़ों के आपसी अंतर्द्वंद्व को लेकर उर्वर ज़मीनें तोड़ी गई : कि चौरी-चौरा में हिंसा करने वाले किसान कैसे अपूर्ण या अप्रशिक्षित असहयोगी थे; या गाँधी के 'महात्म्य' की निर्मिति में किसानों की श्रद्धा और उनके अंधविश्वास का भी योगदान है, जिन्हें गोरखपुर से छपे अख़बार *स्वदेश* के पन्नों ने छापकर न सिर्फ़ अभूतपूर्व प्रसार दिया, बल्कि प्रामाणिकता भी प्रदान की (शाहिद अमीन)। हाल ही में लगभग सैकड़ा मारकर दिवंगत हुए रणजीत गुहा ने औपनिवेशिक अभिलेखागार को एकदम उलटा लटकाकर बाग़ी वनवासियों व किसानों की चेतना को उनके अपने सांकेतिक मुहावरे में पढ़ने की कोशिश की, तो अरविंद नारायण दास ने अकादमिक और पत्रकारीय दोनों इदारों में, ग्रामीण और जातीय इतिहास से लेकर सांस्कृतिक इतिहास तक का वितान रचा। प्रतिमान में हाल ही में हिंदी जनपद के हिंदुस्तानी मर्द की घरेलू भूमिका की पड़ताल करने वाले ज्ञानेन्द्र पांडेय ने नब्बे के दशक में सांप्रदायिकता और राष्ट्रवाद के बीच की सामान्य ज़मीन को रेखांकित करते हुए, आज़ादी और विभाजन के प्रदत्त और आरामदेह फ़र्क़ को मिटा दिया था। अगर बँटवारा एक बड़ी मानवीय त्रासदी था, जिसमें इतने बड़े सामाजिक और घरेलू स्तर पर हिंसा हुई, तो उसके राजनीतिक कारण गिनाना या बड़े नेताओं में से खलनायक चुन लेना सतही लगने लगा। आशिस नंदी और वीणा दास ने मंटो को विमर्श में लाकर न सिर्फ़ साहित्य को पढ़ने के कुछ नये समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक नुस्ख़े दिए, बल्कि सामुदायिक मर्दवादी हिंसा के स्वरूप की भी शिनाख़्त की, जिसे सुधीर कक्कड़ जैसे विद्वानों ने अपने ढंग से आगे बढ़ाया। दीपेश चक्रवर्ती ने मज़दूरों के हिरावल दस्ते की क्रांतिकारी शुचिता को कलकत्ता के जूट मिलों में पूँजी और श्रम के बीच के संघर्ष के सांप्रदायिक इतिहास के ज़रिये पहले ही प्रश्नांकित कर दिया था।

पिछली सदी के आख़िरी दो दशकों में अगर असली दुनिया में ग्लास्नॉस्त और पेरेस्त्रोइका चल रहा था तो सिद्धांतों की दुनिया में उत्तर-आधुनिकता और उत्तर-संरचनावाद ने अपना बौद्धिक लोहा मनवा लिया था, जिसके नतीजे में रूढ़ निश्चिंतताएँ तो ढह ही गईं, समाज को समझने के बौद्धिक औज़ारों में भी अभूतपूर्व बदलाव आए। भाषाई मोड़ आए, विमर्शों का युग आया। मीडिया के इलाक़े में सैटेलाइट चैनलों के आगमन के बाद वैश्वीकरण भी हुआ, और इंटरनेट से लैस कंप्यूटरों की क्षमता, चिप की क्षमता में सुधार के साथ दिन दूनी चार चौगुनी बढ़ती गई। मोबाइल पर आने के बाद दुनिया डिजिटल हुई और मीडिया सोशल हुआ, जिसके साये में जीवन को नित नये चरण में प्रवेश करते हुए हम अमूमन हर पाँच साल के अंतराल पर अचंभित होते हुए देख ही रहे हैं। इंसान डेटा बन चुका है और डेटा अब जोड़-घटाव की कैलकुलेटरीय क्षमता से कहीं आगे जा चुका है। मानवीय रचनात्मकता अब हॉलीवुड में हड़ताल कर रही है, क्योंकि 'एआय' के हाथों पटकथा लेखकों की नौकरियों और उनके भविष्य पर ख़तरा मँडरा रहा है। तो निहायत मुख़्तसर तौर पर, ये विरासत है, और भविष्य की कुछ आहटें। श्रमपूर्वक लिखे गए इन लेखों में आप सामाजिक इतिहास की पारंपरिक परिभाषा का सतत विस्तार देख सकते हैं। लेखों के शीर्षक से उनके निहितार्थ लगभग ज़ाहिर हैं, लेकिन सारे लेख पढ़ने से तआल्लुक़ रखते हैं।

हिंदी जनपद के प्रख्यात शिक्षाविद और दुभाषी लेखक कृष्ण कुमार ने हमें हमेशा याद दिलाया है कि हिंदी पत्रकारिता की उर्जस्वी परंपरा की जड़ें आज़ादी के आंदोलन की सर्वसमावेशी राजनीति में थी, इसीलिए *सरस्वती*, *चाँद*, *माधुरी*, *सुधा* और *कल्पना* से लेकर *धर्मयुग*, *साप्ताहिक हिंदुस्तान*, *दिनमान*, *हंस*, *पहल*, *आलोचना* और *तद्भव* तक हमारा विमर्श सिर्फ़ साहित्य-केंद्रित नहीं रहा। इन पत्रिकाओं के पन्नों में हर तरह की राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय सामग्री छपी, और हम इस गौरवशाली परंपरा के भक्त न सही, वारिस तो ज़रूर हैं।

चंबल आर्काइव्स एवं म्यूज़ियम

पत्रिकाओं के विरसे को सँभालने का काम कई संग्रहकर्ता यूँ करते रहे हैं, गोया वे इसी के लिए पैदा हुए थे। पिछले कुछ सालों में नष्ट हो रहे पुस्तक-संग्रहों को बचाने की मुहिम में कई ऐसे संग्रह-कर्ताओं से मिला हूँ, जिनमें से इटावा के श्री कृष्णा पोरवाल का नाम मैं बड़े आदर से लेना चाहूँगा। 27 जुलाई, 1951 को जन्मे पोरवाल साहब का परिचय मैं इसलिए दे रहा हूँ कि पाठक न सिर्फ़ उनके संग्रह का इस्तेमाल करें बल्कि इसे लंबी ज़िंदगी देने में उनकी मदद करें। पोरवाल साहब ने यह काम 1960 से ही शुरू कर दिया था, और कुछ साल पहले उन्होंने इस निजी संग्रह को 'चंबल आर्काइव्स एवं म्यूज़ियम न्यास' के नाम से संस्थाबद्ध कर दिया है जिसके तहत वे तमाम तरह की अकादमिक और शैक्षणिक गतिविधियाँ भी चलाते रहे हैं। वे असंख्य प्रदर्शनियाँ लगा चुके हैं और साथ में जीवंत प्रस्तुतियाँ दे चुके हैं; उनके संग्रह में दुर्लभ मध्यकालीन मानचित्र हैं, चित्र हैं, लालटेनें हैं, टाइपरायटर हैं, चँवर हैं, तलवारें हैं, हारमोनियम हैं, और पता नहीं क्या-क्या है।

लेकिन पढ़ने-पढ़ाने वालों के लिहाज़ से आज़ादी के पहले और बाद की तमाम पत्रिकाएँ हैं और हिंदी, अंग्रेज़ी और उर्दू की दुर्लभ पुस्तकें हैं, जिनकी रोज़ाना की देखभाल, साफ़-सफ़ाई से लेकर बाइंडिंग तक पिछले साठ सालों से वे ख़ुद अपने हाथों से करते रहे हैं। उनके यहाँ कई विद्वान कुछ दिन ठहरकर पढ़ने भी आते हैं। संग्रह आसानी से नहीं बनते, न ही उन्हें सँजोये रखने का काम हल्के में लिया जा सकता है : इसके लिए कागचेष्टा, बकोध्यानम् की ज़रूरत होती है। पोरवाल साहब और अहमदाबाद के नरेश दुदानी जैसे संग्रहकर्ताओं के अभ्यास से साफ़ है कि यह आजीवन चलने वाला ऐसा काम है, जिसे दैनंदिन स्तर पर चलाये रखना होता है।

00Pratiman_content page_Layout 1 13-02-2024 16:15 Page viii

अलविदा अजातशत्रु!

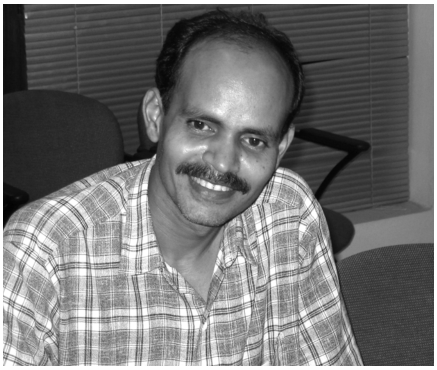

सरकारी नाम रविशंकर श्रीवास्तव, रवि रतलामी के नाम से जग-प्रसिद्ध, राजेश रंजन जैसे लोग आदर से 'रतलामी जी' कहते; गुंटुपल्ली करुणाकर, मेरे और मसिजीवी के लिए सिर्फ़ रवि, लेकिन उम्र का इतना फ़ासला तो था ही कि कभी 'तुम' नहीं कहा तुम्हें, सो आज कह रहा हूँ, कि तुम्हें तो अब फ़र्क़ पड़ने से रहा; कि लहर की शक्ल में गतिशील तुम्हारी जीवन-रेखा सपाट हो गई है : अचानक, वक़्त से बहुत पहले। (तुम्हारा ह्वॉट्सैप का डीपी मुँह चिढ़ा रहा है : Line is life) पता नहीं कितनों की ज़िंदगियाँ बदलीं तुमने। इस सदी के शुरुआती सालों से लेकर आज तक अंग्रेज़ी कंप्यूटरों की शाहराह के समांतर भाषा की पगडंडी पर चलते हुए अपनी औक़ात से बड़े सपने देखते और उनमें से कुछ को साकार करते हुए कितने सारे हमसफ़र बनाये, कितने गिरतों को उठाया, कितने भूलों को सही राह पकड़ाई, और यह सब ऐसे किया गोया तुम इसी के लिए बने थे। यह हमारे मुक्त सॉफ़्टवेयर आंदोलन का सहज अभ्यास था कि हम एक-दूसरे की मदद करेंगे। इसे जिन लोगों ने आत्मसात किया उनमें तुम अग्रणी थे। मसला आया नहीं कि समाधान हाज़िर। हमने साथ मिलकर तक़रीबन 18 साल पहले 2005 में हिन्दी का पहला डेस्कटॉप लोकार्पित किया था। सारा सरकारी बजट एक तरफ़। रवि रतलामी के प्रयास दूसरी तरफ़। तुम अकेले हमारी सरकार थे, इकलौती दुबली-पतली काया की एक भरी-पूरी अहिंसात्मक, हरदिलअज़ीज़, लगातार उम्मीद बाँटती फ़ौज। इंडिक कंप्यूटिंग, इंडलिनक्स, हिन्दी ब्लॉगिंग इन सब बौद्धिक-तकनीकी आंदोलनों की जान थे तुम। भाषायी कंप्यूटिंग के न जाने कितने पहले पन्ने हमने साथ-साथ पलटे; हैरत-भरे सुख के साथ। और जैसे ही तुम्हें कुछ नया ज्ञान पता चलता था, पूरी दुनिया को दे डालते थे। पता नहीं कितनी बार तुम्हारी मदद ली और कितनों को तुम्हारी दिशा में ठेला मैंने! और किसी ने मुड़कर ये नहीं कहा कि मेरी मदद नहीं की।

रवि की याद में हिंदयुग्म, सीएसडीएस व विनीत कुमार द्वारा आयोजित सभा की रिकॉर्डिंग के लिए देखें :

https://www.facebook.com/csdsdelhi/videos/875641130923218